बच्चों की शुरुआती साक्षरता – कुछ अनुभव

कमलेश चंद्र जोशी*

हमारी स्कूली व्यवस्था बच्चों के पढ़ना-लिखना सीखने को अलग ही संदर्भ में देखती है। वह सोचती है कि ये पहली पीढ़ी के बच्चे हैं, ये पढ़ना कैसे सीखेंगे। इनके घर में तो किसी ने पढ़ाई ही नहीं की, ये क्या पढ़ेंगे। पढ़ने की विधियों व कक्षा में पाठ्येतर पुस्तकों के उपयोग के बारे में बात करें तो तर्क होता है कि हमने भी इन्हीं विधियों से सीखा है और दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि पहले वे पाठ्यपुस्तकें तो पढ़ पाएँ तब तो वे अन्य किताबों को पढ़ पाएँगे। परंतु इस बात पर विचार नहीं किया जाता कि पहले कितने बच्चे पाँचवी-आठवीं के बाद स्कूल छोड़ देते थे और कितने कम बच्चे-बच्चियाँ ही ग्रेजुएेशन स्तर तक पहुँच पाते थे। वे कौन-से बच्चे थे जो स्कूल से बाहर हो जाते थे? आज भी बच्चों के सामाजिक व आर्थिक संदर्भों से किनारा ही किया जाता है और उनके न सीख पाने का दोषी उनके माता-पिता व उनके घर के वातावरण को मान लिया जाता है। लेकिन यह प्रयास कम ही किया जाता है कि उनके घर के अनुभवों को कक्षा का हिस्सा बनाया जाए। अगर इन बातों पर ठीक से विचार किया जाए तो कक्षा का वातावरण भी सहज बन सकता है। बच्चों के पढ़ना सीखने के संदर्भ में हमें यह भी समझना ज़रूरी है कि जब छह साल का बच्चा स्कूल आता है तो वह मौखिक भाषा का भरा-पूरा समृद्ध अनुभव, हज़ारों शब्दों की शब्दावली लेकर आता है। ये सब चीज़ें वह घर के परिवेश तथा बातचीत से स्वयं ही सीख जाता है। सवाल यह उभरता है कि परिवेश से इतना कुछ सीखने के बाद भी बच्चे स्कूल में पढ़ना-लिखना क्यों नहीं सीख पाते। इसके अंतर्गत कुछ बातें समझ में आती हैं। पहली बात तो यह है कि कक्षा में उनको पढ़ने-लिखने का समृद्ध माहौल नहीं मिल पाता और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ कठिन होने की वजह से अकसर घर का माहौल भी पढ़ने-लिखने के लिए अनुकूल नहीं होता। स्कूल में भाषा की पढ़ाई पाठ्यपुस्तक केंद्रित रहती है और उसमें सिर्फ़ भाषा के यांत्रिक कौशलों पर

* एकलव्य द्वारा प्रकाशित *शैक्षणिक संदर्भ* (जनवरी-फरवरी 2013) से साभार

ही ध्यान दिया जाता है। इस कारण बच्चों का समझ के साथ पढ़ना पीछे ही छूटता जाता है। इसके अलावा यह बात भी गौरतलब है कि हमारे स्कूलों में बच्चे अलग-अलग बहुभाषिक क्षेत्रों से आते हैं पर उनकी बोली-भाषा का उपयोग स्कूल में नहीं के बराबर ही होता है। ऐसा हम जनजातीय व गरीब शहरी क्षेत्रों में आसानी-से देख सकते हैं जहाँ बच्चों के घर का सांस्कृतिक माहौल दूसरा है, भाषा फ़र्क है जबकि कक्षा में अधिकतर मानक भाषा ही इस्तेमाल की जाती है। वे अन्य विषयों के साथ-साथ कक्षा में इस मानक भाषा को सीखने का प्रयास भी कर रहे होते हैं, जिनका असर उनके पढ़ने-लिखने पर पड़ता है। इस संदर्भ में बच्चों का सांस्कृतिक परिवेश और उनकी साक्षरता की जड़ें किस तरह कक्षा की प्रक्रियाओं का हिस्सा बनें, इस पर स्कूलों में काम करने की ज़रूरत है।

मेरा एक प्रयास

अनुष्का साढ़े पाँच साल की है। जब वह तीन साल की थी तब से हमने उसे कविताएँ-कहानियाँ सुनाना, चित्रों वाली पुस्तकें दिखाना शुरू कर दिया था और वो उसमें रुचि भी लेने लगी। एस्ट्रिड लिंडग्रेन की चित्रात्मक किताब 'पिप्पी के लंबे मोज़े' पर बात करते हुए उसने पूछा था, ''पिप्पी इतने बड़े घोड़े को उठा लेती है?'' वह पिप्पी के दोस्तों अन्निका और टॉमी को भी अच्छी तरह जानती है। पूँछ से लटके बंदर श्री नीलसन को देखकर वह खुश होती है। किताबों के चित्रों को ध्यान से देखती है और सादे चित्रों को क्रेयान से रंगती है। वह कजरी गाय व कौए को जानती है और वह 'बिल्ली के बच्चे', 'मेंढक व साँप', गाँव का बच्चा', 'पाँच दोस्त', 'दोस्त व दुश्मन', 'रूपा हाथी', 'आम की कहानी', पिप्पी पहुँची पार्क में', 'चूहे को मिली पेंसिल', 'मैं भी', मेंढक का नाश्ता', 'छुटकी उल्ली' व 'लालू पीलू' की कहानियों को भी जानती है। वो अपने मन से कहानियाँ भी सुनाती है जिसे कभी-कभी मैं एक कॉपी में लिख लेता हूँ। उसके द्वारा सुनाई गई दो कहानियाँ प्रस्तुत हैं-

एक था बुड्ढा। वह अपने घर जा रहा था। उसकी टाँग में चोट लग गई। तब उसे हॉस्पिटल में एडमिट कराया गया। उनके भतीजों ने पैसे दिए। फिर वह ठीक हो गया।

***

हरी-हरी घास थी। हवा चल रही थी। धूप आ रही थी। एक राजा का महल है। उनका एक बेटा है। वह खेलने गया सुबह-सुबह। वह अपनी पतंग लेकर गया। वह खेलने लगा। एक दिन उसकी पतंग कट गई। दूसरी पतंग ने उसकी पतंग काट दी। फिर वो बच्चा रोने लगा। वह अपने पापा के पास गया। मम्मी खाना बना रही थी। पापा ने कहा, ''तुम जाओ मैं आता हूँ।'' पापा ने कहा, ''मेरे बच्चे की पतंग क्यों काट दी?''

इस तरह से वह तरह-तरह की कहानियाँ बुनती और सुनाती है। कभी-कभी वह चित्र भी

बनाती है। इन कहानियों व चित्रों में उसे सुनाई या पढ़ाई गई चीज़ों की झलक कहीं-न-कहीं मिल ही जाती है।

मुझे अच्छी तरह याद है कि अनुष्का ने एक दिन बातचीत करते समय मुझसे पूछा था, ''कहानी कौन लिखता है?'' मैंने जवाब दिया, ''कहानी हमारे जैसे ही लोग लिखते हैं, बच्चे भी लिखते हैं। जैसे बच्चे चित्र बनाते हैं, जिन्हें तुमने 'चकमक' पत्रिका में देखा है। उसी तरह बच्चे कहानी भी लिखते हैं और वे छपती भी हैं।'' यह बात आई-गई हो गई।

कुछ दिनों बाद मैंने गौर किया, धीरे-धीरे उसने दीवारों व कागज़ पर कुछ स्क्रिबलिंग शुरू की है। मैं उससे उन पर कभी-कभी बात भी करता था कि इस चित्र में तुमने क्या बनाया है, चित्र में क्या हो रहा है, इसमें कौन-कौन-से रंग लगाए हैं आदि। इस बातचीत में उसके बनाए हुए चित्रों का मतलब भी स्पष्ट हो रहा था। इसके बाद मैंने उसके लिए एक अलग कॉपी बना दी जिसमें जब चाहे वह चित्र बना सकती थी। हालाँकि, यह कोई ज़रूरी भी नहीं था कि वह उसकी कॉपी में चित्र बनाए।

चित्र-शब्दों के संबंध की समझ

इस बीच उसने स्कूल जाना शुरू किया और स्कूल में उसने कुछ शिक्षाप्रद कहानियाँ व कविताएँ ही सुनीं, चित्रों पर भी कोई बात नहीं हुई। अंग्रेज़ी और हिंदी में वर्णमाला बार-बार लिखने का काम शुरू हो गया।

एक दिन उसके साथ बातचीत के दौरान मैंने पूछा, ''तुमने इस चित्र में क्या बनाया है?'' उसने बताया, ''यह लड़का है और पतंग उड़ा रहा है।'' मैंने कहा, ''इस बात को हम लिख भी सकते हैं।'' तो उसने कहा, ''पतंग के लिए 'प' बनाना पड़ेगा।'' यहाँ गौर करने की बात यह है कि चित्रात्मक पुस्तकों को देखने-समझने से उसको यह बात समझ में आ गई थी कि चित्र के नीचे लिखी इबारत चित्र के बारे में ही होगी। यह बात ऐसे भी पुख्ता हुई कि मैं चित्रों की किताबों को उसे दिखाते हुए इबारत पर अँगुली रखते हुए यह बताता हूँ कि इस किताब का नाम क्या है, किसने लिखी है, चित्र किसने बनाए हैं आदि। इस तरह उसे किताबों से जुड़ी यह शब्दावली समझ में आ रही थी।

घर में बनाई छोटी-सी लाइब्रेरी

एक दिन दिल्ली के विश्व पुस्तक मेले के बारे में भी बात हुई और मैंने उसे बताया कि वहाँ बहुत-सी अच्छी-अच्छी किताबें मिलती हैं। चाहे वे बच्चों की हों या बड़ों की। मैंने उससे यह भी कहा कि मैं उसके लिए वहाँ से कुछ अच्छी किताबें लाऊँगा। विश्व पुस्तक मेले से मैंने उसके लिए सुंदर तस्वीरों वाली कुछ देशी-विदेशी किताबें खरीदीं। इसके साथ लाइब्रेरी व कजरी गाय से जुड़ा एक पोस्टर भी खरीदा जिसमें बच्चों, कजरी गाय व कौए को लाइब्रेरी में किताब पढ़ते दिखाया गया था। यह कह सकते हैं कि यह पोस्टर को कमरे में दीवान

से सटी दीवार पर लगा दिया और कहा, "अब इस दीवान पर बैठकर हम जब चाहें किताबें पढ़ सकते हैं। इन पर बात कर सकते हैं। यह हमारी लाइब्रेरी है।"

अनुष्का के साथ इस तरह की प्रक्रियाएँ काफ़ी अनौपचारिक ढंग से चल रही थीं और स्कूल की प्रक्रियाएँ अपने औपचारिक ढंग से। एक दिन अनुष्का मेरे साथ खेल रही थी जिसमें वह एक लाइब्रेरियन का रोल कर रही थी। उसने दीवान पर बैठकर अपनी किताबें फैला रखी थीं और मुझसे पूछ रही थी, "आपको कौन-सी किताब लेनी है? आप यहाँ से किताब लो और पढ़ कर वापस कर देना।" मैंने उससे 'पिप्पी के लंबे मोज़े' नामक चित्रमय किताब ली। मुझे नहीं पता कि लाइब्रेरी की यह अवधारणा उसके मन में कहाँ से आई कि लाइब्रेरी से किताबें जारी की जाती हैं। शायद उसने किसी कार्टून प्रोग्राम में देखा हो या कहीं और। एक दिन उसने मुझसे यह भी कहा, "लाइब्रेरी में नानी के लिए भी किताबें होनी चाहिए। जो भगवान वाली किताबें होती हैं, उस तरह की किताब। उनके लिए वैसी किताबें ले आना, वे नानी को अच्छी लगती हैं।"

अब भी उससे लाइब्रेरी के बारे में बातें होती रहती हैं और वह लाइब्रेरी में नई-नई किताबें लाने की माँग भी करती है।

इन प्रक्रियाओं के साथ-साथ उसका चित्र बनाने का काम भी समय-समय पर चलता रहा। उसके बनाए हुए चित्रों पर मैंने एक वाक्य और नीचे उसका नाम लिखना शुरू किया। अब वह अपना नाम खुद लिख लेती है। धीरे-धीरे उसने भी चित्रों के साथ हिंदी की वर्णमाला में सीखे अक्षरों प, अ, ट, फ, क, च आदि को कहानी के रूप में लिखना शुरू किया क्योंकि उसे यह पता था कि चित्र के साथ कहानी की इबारत लिखी होती है।

किताबों के साथ जान-पहचान

इसी परिदृश्य में कुछ और भी जोड़ना चाहूँगा। वह अकसर रात को सोते समय अपनी किताबों का बैग लाकर मुझसे गुज़ारिश करती है कि मैं ये सारी किताबें पढ़कर उसे सुनाऊँ। मैं उससे कहता, "रात को इतनी सारी किताबें पढ़ने में बहुत समय लगेगा, ऐसा करते हैं अभी कुछ किताबें पढ़ लेते हैं।" मेरे न होने पर वह अपनी मम्मी से भी किताबें पढ़वाती है। उसे अपने बैग में रखी सभी किताबों के बारे में पता है। इससे ऐसा लगता है कि उसकी किताबों से अच्छी जान-पहचान हो गई है।

इस प्रक्रिया में यह भी देखने को मिलता है कि अनुष्का किताबों को सार्थक संदर्भों के माध्यम से पढ़ने-लिखने का प्रयास कर रही है। किताबों के नाम पहचानती है। चित्र के नीचे क्या लिखा है उसे जानती है। उसे पता है कि किताब कहाँ से शुरू हो रही है। कहानियों व चित्रों को अपने अनुभव से जोड़ पाती है। वह अपने ढंग से व्याख्या करने का प्रयास भी करती है। उदाहरण के लिए, 'पाँच दोस्त' नामक किताब

पढ़कर उसने कहा, "किताब के सभी दोस्त तो अपना-अपना घर दिखाते हैं, परंतु घोड़ा अपना घर नहीं दिखाता।" इसके साथ ही वह अपने स्कूल में सीखे हुए वर्णों को किताब के शब्दों से जोड़ने का प्रयास भी करती है।

आम बच्चों की तरह वह भी टेलीविज़न पर कार्टून व सीरियल्स देखती है। उसे समय-समय पर हमने बच्चों की फ़िल्में भी दिखाईं जिसमें यूनिसेफ़ द्वारा निर्मित 'मीना' शृंखला की फ़िल्में, बच्चों की अन्य फ़िल्में जैसे– 'मैं हूँ कलाम' व 'लिलकी' शामिल हैं। इन फ़िल्मों के बारे में उसके कुछ अवलोकन भी थे जैसे 'मैं हूँ कलाम' देखकर उसने कहा कि "गरीब बच्चों को भी स्कूल जाना चाहिए, बच्चों को पढ़ना चाहिए, दोनों फ़िल्में बच्चों की पढ़ाई के बारे में हैं। 'मैं हूँ कलाम' में लड़के के बारे में बताया गया है और 'लिलकी' में लड़की के बारे में।" उसके इस सार-संक्षेप से मैं चौंका भी था।

यहाँ यह समझने की भी ज़रूरत है कि उक्त बातों का यह अर्थ नहीं है कि वह जल्दी ही पढ़ना-लिखना सीख गई है। हमने यह सोचा भी नहीं कि वह ऐसे जल्दी से पढ़ना सीख जाएगी। इस पर थोड़ा व्यवस्थित ढंग से काम होना चाहिए और यह काम स्कूल में होना है। हाँ, यह ज़रूर है कि उसकी पढ़ने की नींव ज़रूर पड़ रही है। आगे इमारत खड़ी करने का काम स्कूल का है।

लेकिन स्कूल की अपनी समझ है, वह अपनी समझ से काम करता है। उसे बच्चों को वर्णमाला, अमात्रिक शब्द, मात्रा वाले शब्द, वाक्य, पैराग्राफ़, कहानी आदि क्रम से पढ़ाना है। जबकि ज़रूरत इस बात की है कि स्कूल घर के इन समृद्ध अनुभवों को आधार बनाकर काम करे। कक्षा में ऐसे ही अनुभव प्रदान करें जिससे पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया सार्थक संदर्भों में हो सके। अनुष्का अभी केवल कमल, नमक, नटखट आदि लिखने का अभ्यास कर रही है, जबकि उसकी सोचने-समझने की क्षमताएँ काफ़ी आगे बढ़ चुकी हैं।

इसका क्या हल निकल सकता है? यह काफ़ी जटिल प्रक्रिया है जो स्कूल के प्रबंधन ढाँचे से लेकर पाठ्यक्रम, मूल्यांकन, शिक्षक की भूमिका, भाषा शिक्षण के तरीकों में बदलाव आदि की माँग करती है।

निष्कर्ष

अगर इस पूरे परिदृश्य को हम स्कूली शिक्षा के संदर्भ में देखें तो कुछ संकेत मिलते हैं तथा कुछ प्रश्न भी उभर सकते हैं। मध्यमवर्गीय परिवार में बच्चों को लिखित सामग्री का समृद्ध परिवेश मिलने की वजह से बच्चे पढ़ने-लिखने के लिए अनौपचारिक रूप से तैयार हो रहे हैं। इन अनुभवों को स्कूल में देने के भी प्रयास किए जाने चाहिए क्योंकि आमतौर पर हाशियाकृत समुदाय के बच्चों को ये अनुभव घर में नहीं मिल पाते। इस पर सोचा जाना ज़रूरी है कि क्या इस तरह का माहौल स्कूल में बन सकता है। खासकर, जब शिक्षा का अधिकार अधिनियम के तहत हर स्कूल में एक पुस्तकालय का प्रावधान किया गया है। इस प्रावधान का बेहतर

इस्तेमाल कैसे किया जाए? इसके साथ यह भी समझना ज़रूरी है कि जब हम पढ़ने-लिखने को 'अर्थ निर्माण' के संदर्भ में देख रहे हैं तो इसके अंतर्गत कक्षा में किस तरह से काम हो।

यह विचार करना ज़रूरी है कि यह माहौल बच्चों के पढ़ना-लिखना सीखने में कैसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यह हमारी आम कक्षाओं में क्यों नहीं हो पाता, इसके क्या कारण हैं आदि। अगर कारणों में जाएँ तो यह बात उभरेगी कि कक्षा में बच्चों की संख्या ज़्यादा है, स्कूल में संसाधन नहीं है, शिक्षकों की संख्या कम है और स्कूल के बुनियादी ढाँचे पर सवाल भी उभरेंगे। शिक्षक प्रशिक्षणों में भी इन मुद्‌दों पर चर्चा की जाती है परंतु बिना किसी फ़ॉलो-अप के कक्षा में बात आगे नहीं बढ़ती। यह सभी मुद्दे विचार करने योग्य लगते हैं।

कुल मिलाकर कहने का अर्थ यह है कि बच्चों के पढ़ना-लिखना सीखने को हमें एक सार्थक संदर्भ में देखने का प्रयास करना चाहिए और इसके लिए कक्षा में बाल पुस्तकों का समृद्ध माहौल देने का प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार ही हम बच्चों के भाषा विकास को एक समग्र संदर्भ में देख पाएँगे और भारतीय संदर्भ में बच्चों के पढ़ने-लिखने पर और गहरे विमर्श को संचालित कर पाएँगे।